International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.340, Volume 03, No. 03(I), July - September, 2021, pp.211-217

पत्थर की शिल्प का व्यावसायिक विकास एवं इतिहास

पुष्पा मीणा*

सार

प्राचीन भारत से लेकर आधुनिक भारत के कालक्रम में शिल्पकार को बहुआयामी भूमिका का निर्वाह करने वाले व्यक्ति/इकाई के रूप में देखा जाता रहा हैं। शिल्पकार शिल्पवस्तुओं के निर्माताओं और विक्रेता के अलावा समाज में डिजाइनर, सर्जक, अन्वेषक और समस्याएं हल करने वाले व्यक्ति के रूप में भी अनेक भूमिकाएं निर्वाह करता हैं। अतः शिल्पकार केवल एक सुन्दर वस्तु का सृजन ही नहीं करता अपितु समाज की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए भी कार्य करता हैं। शिल्पकार जिस जीवंत्ता के साथ कार्य करता हैं वह उसे एक सांस्कृतिक प्राणी और सौन्दर्योपासक (वस्तु की सुन्दरता की उपासना एवं आराधना करने वाला) बना देती हैं। विभिन्न वस्तु एवं उत्पाद का निर्माण उनके लिए एक साधना हो जाती हैं तथा अपनी इसी साधना को इन्द्रमुखी आभा प्रदान करने में वह लगा रहता हैं अर्थात् शिल्पकार द्वारा निर्मित उत्पाद उपयोगिता, सौन्दर्य, अन्तसंपर्कों को बढावा देने का उपादान होता हैं।

शब्दकोशः *शल्पकार, शिल्पी, शिल्पकला, कला, अभिव्यक्ति, संस्कृति, सौन्दर्य।*

प्रस्तावना

मानव के कुछ प्राकृतिक मित्र हैं जो मानव जीवन को आसान बनाते हैं। इसमें से धरती और लकड़ी के बाद पत्थर तीसरे स्थान पर आता है। इतिहास के अनुसार पत्थर मानव के विकास और उपकरण प्रयोग में बढ़ती कुशलता का भी एक प्रतीक हैं। पाषाण काल से ही मानव ने पत्थरों के उपयोग को अपने जीवन में स्थान दिया। पत्थरों का उपयोग आवश्यक निर्माण से प्रारंभ होकर अब साज–सज्जा तक आ गया है। पाषाण काल से ही पत्थर का प्रयोग खुदाई के औजार के साथ–साथ दैनिक प्रयोग जैसे छुरी, शिकस के लिए भाले की नोक तथा एक हथियार के रूप में भी किया गया। मानवों के विकास के साथ इसका प्रयोग पूजा–अर्चना और साज–सज्जा के कार्यों के लिए भी किया जाने लगा।

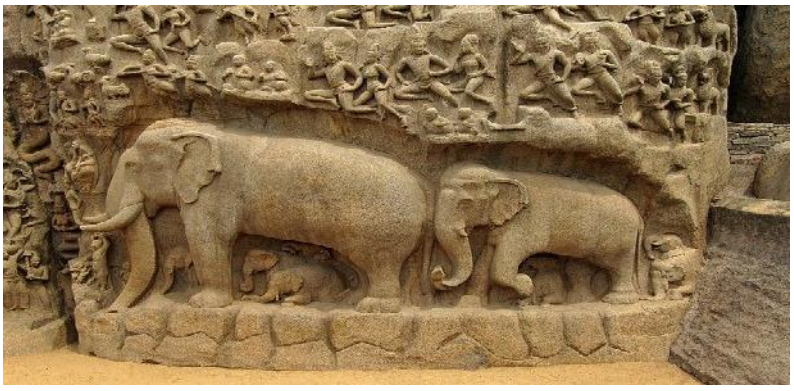

[6] सहायक आचार्य (समाजशास्त्र), स्व. राजेश पायलट राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बांदीकुई, दौसा, राजस्थान।

भारत में कला एवं शिल्प जीविकापार्जन के साधन हैं। शोकिया टूर पर इनका इस्तेमाल किया जाना एक पश्चिमी धारणा है। भारतीय लोक एवं समाजों में कला एवं शिल्प का जन्म उनकी आवश्यकता होने तथा लोगों के सचेत होने पर हुआ। जिसने उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की तथा जो बाद में 'शिल्प' कहाई। कला एवं शिल्प लोगों को जीविका तो उपलब्ध कराते ही हैं इससे अधिक महत्वपूर्ण यह है कि जीवन के अधिकतर अवसरों जैसे जन्म, दीक्षा संस्कार, विवाह, मृत्यु के साथ साथ वार्षिक एवं ऋतु सम्बन्धी त्योहरों पर भी इनका प्रयोग किया जाता हैं। अतः इस वर्ग के अधिकाशं प्रदाशों में टेराकोटा, चित्रकारी, काष्ठ एवं धातु निर्मित प्रादर्शों को सम्मिलित किया गया है जो भारत में पारंपरिक एवं सामयिक ग्रामीण एवं जनजातीय जीवन के सामाजिक–धार्मिक क्रम के अभिन्न अंग हैं। इस वर्ग अंतर्गत इं.गा.रा.मा.सं. द्वारा इस वर्ग अंतर्गत विभिन्न रूपों में कई रचनात्मक प्रादर्श एवं उनके माध्यम जिसमें टेराकोटा, काष्ठ, घास, शीप, लोहा, घंटियाँ एवं चित्र इत्यादि शामिल हैं, का संग्रह किया गया है।

कला क्या हैं : कला जिसे आंग्ल/पाश्चात्य भाषा में 'आर्ट' (ART) कहा जाता हैं। लैटिन भाषा के 'आर्स' (Ars) शब्द से बना हैं और इसका ग्रीक रूपान्तरण हैं–TEXVEN (rSDus)। इस शब्द का प्राचीन अर्थ शल्पि (CRAFT) अथवा नेपुण्य हैं। भारतीय मान्यता में भी कला के लिए शिल्प तथा कलाकार के लिए शिल्पी शब्द का प्रयोग किया गया हैं अर्थात कला का अर्थ तक निश्चित नहीं हो पाया हैं। विभिन्न भारतीय व पाश्चात्य विद्वानों ने इसकी भिन्न–भिन्न परिभाषाएं दी हैं। यथा–

- **रविन्द्रनाथ टैगोर –** 'जो सत हैं, जो सुन्दर हैं, वही कला हैं।'
- **मैथिलीशरण गुप्त –** 'कला अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति हैं।'
- **असित कुमार हाल्दार –** 'कला मानव का सात्विक गुण हैं। एक सरल भाषा हैं, जो मानव जीवन के मूल्यों को सौन्दर्यात्मक एवं कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत करती हैं।'
- **डॉ श्यामसुन्दर दास –** 'जिस अभिव्यंजनों में आंतरिक भावों का प्रकाशन और कल्पना का योग रहता हैं। वही कला हैं।'
- **पाश्चात्य विद्वान कवि शैले –** 'कला कल्पना की अभिव्यक्ति हैं। '
- **फ्रायड –** 'दमित वासनाओं का उभरा हुआ रूप ही कला हैं।'
- **प्लेटो –** 'कला सत्य की अनुकृति की अनुकृति हैं।'
- **अरस्तु –** 'कला प्रकृति के सौन्दर्य अनुभवों का अनुकरण हैं।'
- **फागुए –** 'कला भावों की उस अभिव्यक्ति को कहते हैं जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके।'
- **टाल्सटॉय –** 'कला एक मानवीय चेष्टा हैं, जिसमें एक मनुष्य अपनी अनुभूतियों को स्वेच्छापूर्वक कुछ संकेतो के द्वारा दूसरों पर प्रकट करता हैं।' तथा 'कला' की महता का ज्ञान भावों की सफल अभिव्यक्ति और कलाकारों के मन पर पडे प्रभावों का सफलतापूर्वक संप्रेषण हैं।'
- **आर.जी. कलिंगवुड –** 'कला एक व्यक्ति की रचनात्मक इच्छा की सुन्दर अभिव्यक्ति हैं। यह कल्पना की रचनात्मक प्रक्रिया द्वारा हमें प्राप्त होती हैं।'
- **हैंगले –** 'प्राकृतिक सौन्दर्य ईश्वरीय सौन्दर्य का आभास हैं। कला उसी आभास की पुनरावृति हैं।'
- **हर्बट स्पेन्सर –** 'अतिरिक्त शक्ति का बहिप्रेपण ही कला हैं।'

कला मानवीय भावनाओं, कल्पनाओं की सहज सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति, संस्कृति की वाहिका तथा कल्याण की जननी हैं। योग–साधना हैं, मानव के रचनात्मक विचारों का एक दृश्य रूप हैं, आदर्श–प्रियता एवं सृजन शक्ति हैं जो भावपूर्ण व रसपूर्ण हैं। कला का अर्थ उसके प्रभाव में निहित हैं। कला एक प्रकार का कृत्रिम निर्माण हैं, जिसमें शारीरिक और मानसिक कौशलों का प्रयोग होता हैं। 'कला' एक बहुमूल्य सम्पत्ति हैं। कला में भावना, कल्पना, सौन्दर्य अनुभूति इत्यादि को शीर्ष स्थान तक पहुंचाने का विशेष सामार्थ्य होता हैं। कला जीवन

को उभारती हैं। सत्यम शिवम् सुन्दरम से समन्वित करती हैं, इसके द्वारा बुद्धि आत्मा का सत्य स्वरूप झलकता हैं। कला उस क्षितिज की भांति हैं जिसका कोई छोर नहीं हैं। हृदय की गहराईयों से निकली अनुभूति जब कला का रूप लेती हैं, तो मानों कलाकार का अन्तर्मन मूर्त रूप ले उठता हैं। कला ही आत्मिक शांति का माध्यम हैं, वह कठिन तपस्या हैं, साधना हैं। इसी के माध्यम से कलाकार सुनहरी और इन्द्रधनुषी आत्मा से स्वप्निल विचारों को साकार रूप देता हैं। कला में वह शान्ति हैं जिसमें मनुष्य को संकीर्ण विचारों को साकार रूप देता हैं। कला में वह शान्ति हैं जिसमें मनुष्य को संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठाकर ऐसे, ऊंचे स्थान पर पहुंचा देती हैं जहां मनुष्य केवल मनुष्य रह जाता हैं। कला व्यक्ति के मन में बसी स्वार्थ, परिवार, क्षेत्र, धर्म, भाषा और जाति की सीमाएं मिटाकर विस्तृत और व्यापकता प्रदान करती हैं। व्यक्ति के मन को उदात्त बनाती हैं। वह व्यक्ति को 'स्व' से निकालकर 'वसुधैव कुटुंबकम्' से जोडती हैं। कला ही हैं जिसमें मानव मन में संवदनाएं उभारने', प्रवृतियों को ढालने तथा चिंतन को मोडने की अभिरूचि की दिशा देने की अद्वैत क्षमता हैं। इसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति हैं। यह अपना जादू तत्काल दिखाती हैं और मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति हैं। यह अपना जादू तत्काल दिखाती हैं और व्यक्ति को बदलने में, लोहा पिघलकर भट्टी की तरह मनोवृति में भारी रूपान्तरण प्रस्तुत करती हैं।

कला के द्वारा कलाकार अपने अभिनव दृष्टिकोण के साथ अपनी नैसर्गिक प्रतिभा का सामंजस्य करके सांस्कृतिक मान्यताओं का मूल्यांकन करते हुए उनकी उपादेयता और महत्ता प्रतिपादित करता हैं अर्थात् कला संस्कृति की वाहिका, ज्ञापिका, विशिष्ट अंग और संस्कृति की भाषा हैं। आनन्द वृतिमूलक कला सर्जना किसी भी व्यक्ति की अन्तःसता से सम्बद्ध एक ऐसी ध्येयनिष्ठ प्रक्रिया हैं जो रसद्रवित कलाकार के बाह्म प्रयत्न से सिद्ध हो जाती हैं। आत्मोपलब्धि, आत्मविकास तथा आत्माभिव्यक्ति ही कला की मूल हेतु हैं। तन्मयता तथा तदाकार परिणति की यह शक्ति ही कला को अन्य शास्त्रों तथा विधाओं से पृथक करती हैं और यही उसकी चरम सार्थकता हैं। रसवता और सौंदर्य सम्पन्नता कला के अनिवार्य तत्व हैं। कला मनोमय जगत और भूतमय जगत के मध्य एक सेतु हैं। जिससे हम जान सकते हैं कि मनुष्य ने राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण में एक और कितना सोचा था और दूसरी और कितना निर्माण किया हैं।

यद्यपि कला का क्षेत्र विस्तृत हैं। इसमें अनेक प्रकार की यथा संगीत, नृत्य, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला, नाट्यकला, ललितकला, इत्यादि का समावेश हैं। प्रमुखतया 64 कलायें मानी गई हैं जिनमें कुछ अधिक समृद्ध हुई हैं, लेकिन हमारे अध्ययन का विषय वास्तृकला व मूर्तिकला तक ही सीमित हैं। अतः हम कला का अध्ययन वास्तु/स्थापत्य व मूर्तिकला को मद्देनजर रखते हुए किया गया हैं।

ये सभी वस्तुएं कलाएं भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण सौन्दर्यधायक अंग हैं। किंवा संस्कृति का निर्माण करने वाले तत्वों में से ही एक हैं। किसी भी देश की सांस्कृति प्रगति को मापने के लिए वहां की कलाओं की स्थिति तथा कला नैपुण्य भी एक आधार हैं। अतः भारतीय संस्कृति के सम्पूर्ण स्वरूप के ज्ञान के लिए भारती कि कला का अध्ययन करना अनिवार्य हैं। कला को जाने बिना संस्कृति का पूर्ण आंकलन सम्भव ही नहीं हैं।

कला के प्रकार

- दृश्य कला
- प्रदर्शनी कला

दृश्य कला को भी तीन भागों में बांआ गया है–

- चित्रकला
- मूर्तिकला
- वास्तुकला

प्रदर्शनी कला को दो भागों में बांटा गया हैः–

- काव्य कला
- संगीत

भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला का इतिहास अत्यंत प्राचीन है जो मानव सभ्यता के विकास क्रम से भी जुडा हुआ है। वस्तुतः भारतीय कला भारतीय धर्म और संस्कृति की मूर्त अभिव्यक्ति रही है जहां व्यक्ति की सोच नहीं अपितु भारतीय समाज का सामूहिक अनुभव और चिन्तन ही व्यक्त हुआ है। भारत की प्राचीन स्थापत्य कला में मंदिरों का विशिष्ट स्थान है। भारतीय संस्कृति में मंदिर निर्माण के पीछे यह सत्य छुपा है कि ऐसा धर्म स्थापित हो जो जनता को सहजता व व्यवहारिकता से प्राप्त हो सके। इसकी पूर्ति के लिए मंदिर स्थापत्य का प्रादर्भाव हुआ।

मंदिर शब्द संस्कृत वाग्मय में अधिक प्राचीन नहीं है। महाकाव्य और सूत्रग्रंथों में मंदिर की अपेक्षा देवालय, देवायतन, देवकुल, देवग्रह आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। देवालय शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में आता है। मंदिर का सर्वप्रथम उल्लेख शतपय ब्राह्मण में मिलता है, शाखांयन स्त्रोत सूत्र में प्रसाद को दीवारों, छत तथा खिडकियों से युक्त कहा गया है। वैदिक युग में प्रकृति देवों की पूजा का विधान था। कहा जाता है कि हिन्दू मंदिर की रचना लगभग 10 हजार वर्ष पूर्व हुई थी हालांकि लोक जीवन में मंदिरों का महत्व उतना नहीं था जितना आत्मचिंतन, मनन और शास्त्रार्थ का था। दार्शनिक विचारों के साथ रूद्र तथा विष्णु पूजा को स्थान मिला था। प्रथम सदी के लगते ही पूजन विधि में बदलाव आने लेगा। हां यह कहा जा सकता है कि देवताओं का पूजन जिस विधि से इस सदी में होने लगा वह वैदिक साहित्य में नहीं मिलता। परन्तु वैदिक शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में था।

रामायण काल में मंदिर होते थे इसके भी प्रमाण है। राम का काल आज से लगभग 7 हजार 200 वर्ष पूर्व था अर्थात 5114 ई.पू.। राम के काल में सीता द्वारा गौरी पूजा करना इस बात का सबूत है कि उस काल के देवी–देवताओं की पूजा का महत्व था और उनके घर से अलग पूजा स्थल होते थे।

इसी प्रकार **महाभारत काल** में दो घटनाओं में कृष्ण के साथ रूकमणी और अर्जुन के साथ सुभद्रा के भागने के समय दोनों ही नायिकाओं द्वारा देवी पूजा के लिए वन में स्थित गौरी माता (माता पार्वती) के मंदिर की चर्चा है। इसके अलावा युद्ध की शुरूआत के पूर्व भी कृष्ण पाण्डवों के साथ गौरीमाता के स्थल पर जाकर उनसे विजयी होने की प्रार्थना करते है।

महाभारत के मध्याय 188 और 190 में ऐसा उल्लेख है' 'वे (कुषाण) देवताओं की पूजा वर्जित कर देगें और हड्डियों की पूजा करेंगे। ब्राह्मणों के निवास स्थानों, ऋषियों के आश्रमों, देवस्थानों और नाग मंदिरों के स्थान पर एडूकों बन जावेंगे और सारी पृथ्वी एडूकों से अंकित हो जावेगी। वह देव मंदिरों से विभूषित नहीं रहेगी।'

कुषाण सातवाहन काल में अग्नि मंदिरों को ध्वस्त करने का उल्ले,ा भी प्राप्त है। यानि कि कुषाण काल हिन्दू देवालय के लिए विनाश काल सिद्ध हुआ। देवालयों के स्थान पर बौद्ध चैत्य, मठ व विहार ही दृष्टिगोचर होने लगे।

चौथी शताब्दी से भारत में गुप्ता सम्राटों का शासन आरम्भ होता है और यह काल प्रत्येक दृष्टि से स्वर्ण काल माना जाता है। कला की दृष्टि से यह स्वर्ण काल सिद्ध हुआ। इस काल को मंदिरों का पुनः निर्माण काल भी माना जा सकता है, क्योंकि इस समय हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान उन्नति के पथ पर आरूढ होने के लिए मनुष्य के सम्मुख बुद्ध या महावीर जैसे पूर्ण संगुण पुरूष आदर्श के रूप में रहने चाहिये। जिनके चरित्र व जीवन से मनुष्य लाभ उठा सके।' इसलिये हिन्दू धर्म में महापुरूषों (देव–देवियों) की स्थापना हुई और उनकी पूजा अर्चना हेतु मंदिरों की अर्थात भावना से प्रेरित होकर राजा तथा प्रजा ने देव स्थानों (मंदिरों) की प्रतिष्ठा करना पुनः आरम्भ किया और बुद्ध विहारों में बुद्ध प्रतिभा की तर्ज पर मंदिरों में हिन्दु देवी देवताओं को प्रतिष्ठित किया जाने लगा।

भारत में मंदिर ईसा की पांचवी शती से मिलने आरम्भ होते है। उसके पहले के काल के केवल अवशेष मिलते है। भारतीय मंदिर देश की परम्परा तथा प्रतिभा की उपज है। धर्म के लोकप्रिय स्वरूप की छाया देवालयों में ही स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। मंदिर की वास्तुकला न केवल साधारण जन के आवास भिन्न है वरन्

आध्यात्मिक भावना और विशिष्टता की प्रेरणा के स्त्रोत भी है। मंदिर का उच्च शिखर दूर से ही उच्च स्वर में ईश्वर की सर्वव्यापकता का उद्घोष करता है। मंदिर के समीप आते ही मानव सांसारिकता से विमुख हो सर्वशक्तिमान ईश्वर के चिन्तन में लीन हो जाता।

मंदिरो का वास्तुशास्त्र

एक मंदिर के विभिन्न अंग होते हैं– शिखर/विमानम्, गर्भगृह, कलश, गोपुरम, रथ, उरूशृंग, मण्डप, अर्थमण्डप, जगदि, स्तम्भ, परिक्रमा पथ, शुकनास, तोरण, अन्तराल, गवाक्ष, आमलक, अधिष्ठान इत्यादि। 'प्रारंभिक काल के मंदिर सादा थे। इनमें स्तंभ अलंकृत नहीं थे। शिखरों के स्थान पर छत सपाट होती थी तथा गर्भगृह में भगवान की प्रतिमा, ऊंची जगती आदि होते थे। गर्भगृह के समक्ष स्तम्भों पर आश्रित एक छोटा अथवा बडा बरामदा भी मिलने लगा। यही परम्परा बाद के कालों में प्राप्त होती है।' उत्तर गुप्त काल की छतें शिखर युक्त थी।

मंदिर का रूप विधान

कलाकार ने अपने इष्टदेव को मानव आकृति प्रदान कर उसे मंदिर के गर्भगृह में स्थापित किया। इसी विचार से प्रेरित होने पर इस बात की कल्पना की गई कि मानव शरीर के अन्दर निवास करने वाले देव का बाहर प्रतिष्ठित करने के लिए मानव देहरूप ही मंदिर तैयार किया जाय। अतः देवता के आवास मंदिर को मानव के शारीरिक अंगे के समान निर्मित किया गया। भारत में मूर्तिकला अपने वास्तविक रूप में सिन्धु सभ्यता के दौरान अस्तित्व में आई। इस सभ्यता की खुदाई में अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई है। जो लगभग 4000 वर्ष पूर्व ही भारत में मूर्ति निर्माण की तकनीक के विकास का घोतक हैं। भारतीय मूर्तिकला की परम्परा सिन्धु सभ्यता से फैली। उत्खनन में मूर्तियां, प्रस्तर छाड और विभिन्न रूपों में उपलब्ध है। जैसे कि देवी–देवताओं, नृतकियां, देव–दासियों, उपासिकाओं, पक्षियों और कुछ साधारण स्त्री व पुरूष की। हडप्पा की कुछ मूर्तियां तो बडी कलात्मक और कल्पनापूर्ण है। ये पाषाण युग के सहस्त्रों वर्षों के पश्चात की प्राचीनतम मूर्तियां है। मोहनजोदडों एवं हडप्पा नगरों के अवशेषों से अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई है। सिन्धुवासी मिट्टी, पत्थर तथा तांबे की मूर्तियां बनाते थे। इनमें बैल, हाथी, बाघ और गेंडे की मूर्तियां होती थी। स्त्री मूर्तियों का तो वे अलंकार आदि पहनाकर श्रृंगार आदि भी करते थे।

सिंधुकाल

हडप्पा में उपलब्ध शिल्प आकृतियों में सर्वाधिक मिट्टी की मूर्तियों उपलब्ध हुई है। ये मूर्तियां मानव और पशु दोनों की है। मोहनजोदडों व हडप्पा में जो नारी आकृतियां मिली हैं वे कर्धनी से नीचे घुटने के ऊपर स्कर्ट की तरह एक वस्त्र पहने दिखाई गई है। शेष सर्वथा नग्न हैं। इन मृणमूर्तियों को लम्बी–लम्बी कई लडी वाले हारों से अलंकृत दिखाया गया है। हडप्पा में एक नारी आकृति को तीन पाये वाली कुर्सी पर बैठा दिखाया गया है। हडप्पा में एक नारी आकृति को तीन पाये वाली कुर्सी पर बैठा दिखाया गया है। गर्भवती प्रतीत होती स्त्रियों की भी मूर्तियां मिली है। कुछ नारी आकृतियों को शिशु के साथ दिखाया गया है तो कुछ को सुधापान कराते हुए। परवर्ती नारियों की भांति कुछ नारियों को हाथ में पक्षी लिए भी बताया है। कुछ में नारी को तख्ते पर लेटा हुआ दर्शाया गया है। जिसमें नारियों में उत्पादिका शक्ति को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। ये निश्चय ही मातृदेवी की मूर्तियां प्रतीत होती है जो केवल पूजा के उद्देश्य से बनायी जाती थी।

श्रोतसूत्रों एवं बौद्ध जातकों में ग्रामों के पेशेवर शिल्पीयों का उल्लेख मिला है महाकाव्य रामायण, महाभारत, बौद्ध तथा जैन साहित्य, संस्कृत नाटकों, पौराणिक ग्रंथो में भी शिल्पकला से संबंधित अनेक जानकारियां मिलती है। स्मृतियां तथा पुराणों में मंदिरों मूर्तियों, चित्रों तथा अन्य प्रकार की कलाओं से संबंधित जानकारी है। पाणिनी की अष्टाध्यायी में शिल्प को चारू (ललित) कहा गया है। वात्सयायन के कामसूत्र, भरत के नाट्यशास्त्र, कालिदास के काव्य नाटकों, कल्हण की राजतंरिगिणी में मंदिरों, विहारों, मूर्तियों के निर्माण का उल्लेख है। वही पांतजलि के महाभाष्य में शिव भागवतों द्वारा पूजी जाने वाली मूर्तियों एवं प्रतीकों का उल्लेख हुआ है। अग्नि पुराण के लगभग एक दर्जन अध्याय मात्र मूर्तिकला पर प्रकाश डालते है। अर्थात पाणिनी के समय तक भारत में मूर्ति पूजा प्रतिष्ठित हो चुकी थी। पाणिनी के एक सूत्र से प्रकट होता है कि मूर्तियां

सार्वजनिक स्थानों अथवा व्यक्तिगत देवालयों में प्रतिष्ठित की जाती थी और जनता उनकी पूजा करती थी। भारतीय मूर्ति और स्थापत्य कला में सबसे मनोरम रूप प्रकट हुआ। इस काल में गुप्त युग के ओज और नवीनता का स्थान लालित्य ने ले लिया। कला की दृष्टि से मध्य युग को दो भागों में बांटा गया।

- पूर्व मध्यकाल (600–900)
- उत्तर मध्यकाल (900–1200)

पूर्व मध्यकाल

यह काल जो कि हर्षवर्धन (630–647) का काल था। इस काल में कला बहुत उन्नत रही। इस युग की मूर्तिकला की प्रधान विशेषता घटनाओं के बडे–बडे दृश्यों का सफल अंकन है। अब शिल्पियों ने दृश्यों के अंकन के लिए सौ फुट ऊंची विशाल चट्टाने चुनी। इस समय तक उनका हाथ इतना सध चुका था कि उनकी छैनी ने दुर्गा महिषासुर युद्ध, शिव का त्रिपुरदाह, रावण द्वारा कैलाश पूर्वत के उठाने जैसे बडे बडे दृश्यों को काफी गति, अभिनय और सजीवता के साथ तराशा गया। इस युग के तीन प्रधान मूर्ति केन्द्र थे – महाबलीपुरम, एलौरा, एलिफेण्टा।

- **एलौरा का मूर्ति शिल्पः–** कैलाश मंदिर– रावण द्वारा कैलाश पर्वत को उठाना– जिसमें पार्वती भयभीत होकर शिव के कंधे का सहारा ले रही है लेकिन शिव शान्त भाव से अटल है। इसमें रावण का अभिमानी रूप, स्पष्ट अभिव्यक्त हो रहा है। शिव का त्रिपुरदाह इसमें शिव योद्धा वेश में है, नृसिंह अवतार का दृश्य, भैरव की ओजपूर्ण प्रतिमा, शिव पार्वती विवाह, इन्द्र–इन्द्राणी इत्यादि।
- **एलिफेण्टाः–** शिव की प्रकाण्ड त्रिमूर्ति – शिव के तीन मुख, मुख पर शान्त व गम्भीर भाव–मस्तक पर विशाल जटा मुकुट, पेंचदार लटें, आभूषण। शिव–ताण्डव नृत्य, शिव असुरों का नाश करते हुए, शिव पार्वती विवाह, रावण द्वारा क्षमायाचना अर्द्धनारीश्वर इत्यादि।
- **महाबलीपुरमः–** शेषधायी विष्णु मूर्ति, वराह अवतार, नरसिंह वर्मन की मूर्ति भागीरथ की तपस्या का दृश्य।

उत्तर मध्यकाल (900–1200)

इस काल में अलंकरणों पर बहुत बल दिया गया। तंत्र वाद के प्रभाव से कुछ स्थानों पर अश्लील मूर्तियों को प्रधानता मिली। मूर्तियों एवं मंदिरों के शिलप में पुरानी मौलिकता लुप्त हो गई थी, वे पुरानी रूढियों का पालन करते हुए अपनी रचनाओं को अधिक से अधिक भडकीला बनाने का यन्त करने लगे। यह सौन्दर्य नहीं अपितु चमत्कार का युग था। इनकी कृतियों में कला नहीं, कला भास है। इस काल में देश को विभिन्न भागों में विभाजित किया – उडीसा, बंगाल, बिहार, बुन्देलखण्ड, मध्य भारत, गुजरात, राजस्थान मण्डल, तमिल मण्डल। इस समय के मंदिरों में प्रमुख है भुवनेश्वर, कोणार्क, खजुराहो के मंदिर।

राजपूताना

अति अलंकार प्रधान शैली मंदिर का चप्पा–चप्पा शिल्प से अलंकृत विलक्षण जालियां, पुतलियां, बेल–बूटे, नक्काशियां छत की सुन्दरता, नृत्य की भाव–भंगिमा, संगीत मण्डलियां इत्यादि इस मूर्तिकला की विशेषता है।

खजुराहो

सुन्दर मूर्तियों से अलंकृत कामशास्त्र सम्बन्धी अश्लील मूर्तियां, यक्ष और वृक्षिकाओं से अंकन।

उडीसा

नायिका भेद, नाग कन्याओं की सुगम मूर्तियां जिनके गोल मुख, पत्र लिखती नारी मूर्ति की भाव–भंगिमा भी मनोरम है। मूर्तियों में मातृत्व की अभिव्यक्ति, माता अपने शिशु को लाड करने में मानों अपने हृदय को निकालकर रख देती है, अंकित की गई है। यहां भी अश्लील मूर्तियों की भरमार है।

निष्कर्ष

कहा जा सकता है कि भारतीय कला चाहे स्थापत्य हो या मूर्तिशिल्प प्राचीनकाल से अपना क्रमिक विकास करते हुए गुप्तकाल व पूर्वमध्यकाल तक अपने पर चरमोत्कर्ष पहुंच गई थी, जो भारतीय संस्कृति व सभ्यता की प्रतीक बनी। वर्तमान संदर्भ में सिकन्दरा (दौसा) में पत्थर पर नक्काशी को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक विशेष मुकाम हासिल किया हैं। सिकन्दरा के शिल्पकार देश ही नहीं बल्कि विदेशों के पत्थर को भी मूर्त रूप देने में महारथ हासिल कर चुके हैं। देश में अब तक हुए सभी स्टोन आर्ट (पत्थर मेल) में सिकन्दरा की पत्थर नक्काशी ने महत्वपूर्ण स्थान बनाया हैं। इस कारोबार में 15 से 18 हजार शिल्पकार यहां लगभग 400 से अधिक इकाईयों में पत्थर को मनचाहा रूप देने में जुटे हुए हैं। यह व्यवसाय सालाना 240 करोड रूपये को पार कर चुका हैं। छेनी हथौडी से पत्थर पर नक्काशी, लाल पत्थर नागौर के, छोटी खाटू व बडी खाटू का पीला पत्थर, रेनवो (लहरिया) ललितपुर के ग्रे तथा मध्यप्रदेश के मुरैन में निकलने वाले यलो – व्हाईट पत्थर को प्रतिमा, मंदिर सहित मकानो के सजावटी सामान (जाली, झरोखे, छज्जे, गुंबद, महराब, तोरण द्वारा व चौखट) छतरियां, पशु–पक्षी, प्राकृतिक दृश्य (फूल पत्ती, बेल बूटे, फव्वारे व अन्य सजावटी सामान) इत्यादि को बनाने में महारथ हासिल हैं। यद्यपि जयपुर में पत्थर/तक्षण नक्काशी काफी पुरानी कला हैं जहां मार्बल पर नक्काशी के साथ हिन्दू – देवी देवताओं की मूर्ति बनाने का काम होता हैं लेकिन सिकन्दरा की पत्थर नक्काशी इनसे भिन्न हैं क्योंकि वह पत्थर नक्काशी प्राकृतिक मानी जाती हैं अर्थात यहां शिल्पकार पत्थर की ही नक्काशी कर उसे मूर्त रूप देता हैं जबकि अन्य जगहों पर पत्थर पर विभिन्न प्रकार के रसायनों व पाउडरों का उपयोग कर सजावट की जाती हैं। परिणामतः सिकन्दरा की नक्काशी हमेशा एक जैसी रहती हैं और इसलिए इसे प्राकृतिक नक्काशी के रूप में जाना जाता हैं।

सिकन्दरा में पत्थर नक्काशी में कार्यरत शिल्पकारों में से लगभग 99 प्रतिशत लोग सैनी समाज से सम्बद्ध हैं जो इस क्षेत्र में आर्थिक रूप से पिछडी जाति हैं। इसका मुख्य व्यवसाय वर्तमान में पत्थर पर नक्काशी हैं यद्यपि यह जाति एक कृषि प्रधान जाति हैं। पानी की कमी इस जाति को रोजगार हेतु पूर्णतः इसी व्यवसाय पर निर्भर कर दिया हैं। सामाजिक स्तर पर यह समाज अशिक्षा, बाल विवाह व अन्य कुरीरियों से ग्रस्त हैं। सिकन्दरा में पत्थर नक्काशी में महिला व पुरूष दोनों कार्य करते हैं। इनके कार्यों व श्रम में विभाजन किया हुआ हैं जहां पुरूष पत्थर को तराशने का कठौर श्रमपूर्ण कार्य करते हैं वहीं महिला इन तराशी गई नक्काशी को साफ करने का कार्य करती हैं। पत्थर नक्काशी से अत्यधिक धूल निकलती हैं जिससे इन लोगों में सिलिकोसिस नामक बीमारी तीव्र गति से फैल रही हैं और इससे अनेक शिल्पकार अकाल मृत्यु के ग्रास बन चुके हैं।

इस प्रकार सिकन्दरा में सिलिकोसिस जैसी बीमारी महत्वपूर्ण चुनौती हैं जिसमें सरकार द्वारा श्रमिकों के पंजीयन की सुविधा भी उपलब्ध नहीं हैं। साथ ही समय समय पर गुर्जर आन्दोलन जैसी घटनाओं से जिससे इस व्यवसाय का कारोबार महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित हुआ हैं। स्टोन पार्क जैसे मुद्दों को भी उठाया जा रहा हैं। श्रम कल्याण मंत्रालय द्वारा श्रमिक प्रमाण पत्रों की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा हैं। इस प्रकार सिकन्दरा के सन्दर्भ में शिल्पकार के सम्पूर्ण जीवन (सामाजिक–सांस्कृतिक आर्थिक एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी) का समाजशास्त्रीय अध्ययन द्वारा मूल्यांकन प्रस्तावित शोध के माध्यम से किया जावेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विजयवर्गीय रामगोपाल–कला दर्शन–
2. श्रीवास्तव लक्ष्मी– कला निनाद–विभा प्रकाशन, इलाहाबाद
3. विश्वकर्मा रामकुमार–भारतीय चित्रकला में संगीत – प्रकाश विभाग, सुचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
4. कासलीवाल मीनाश्री 'भारती' – ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त – राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर
5. श्रीवास्तव डॉ. लक्ष्मी– कला निनाद –विभा प्रकाशन, इलाहाबाद।

❖◆❖